गङ्गास्तोत्रपञ्चकम्

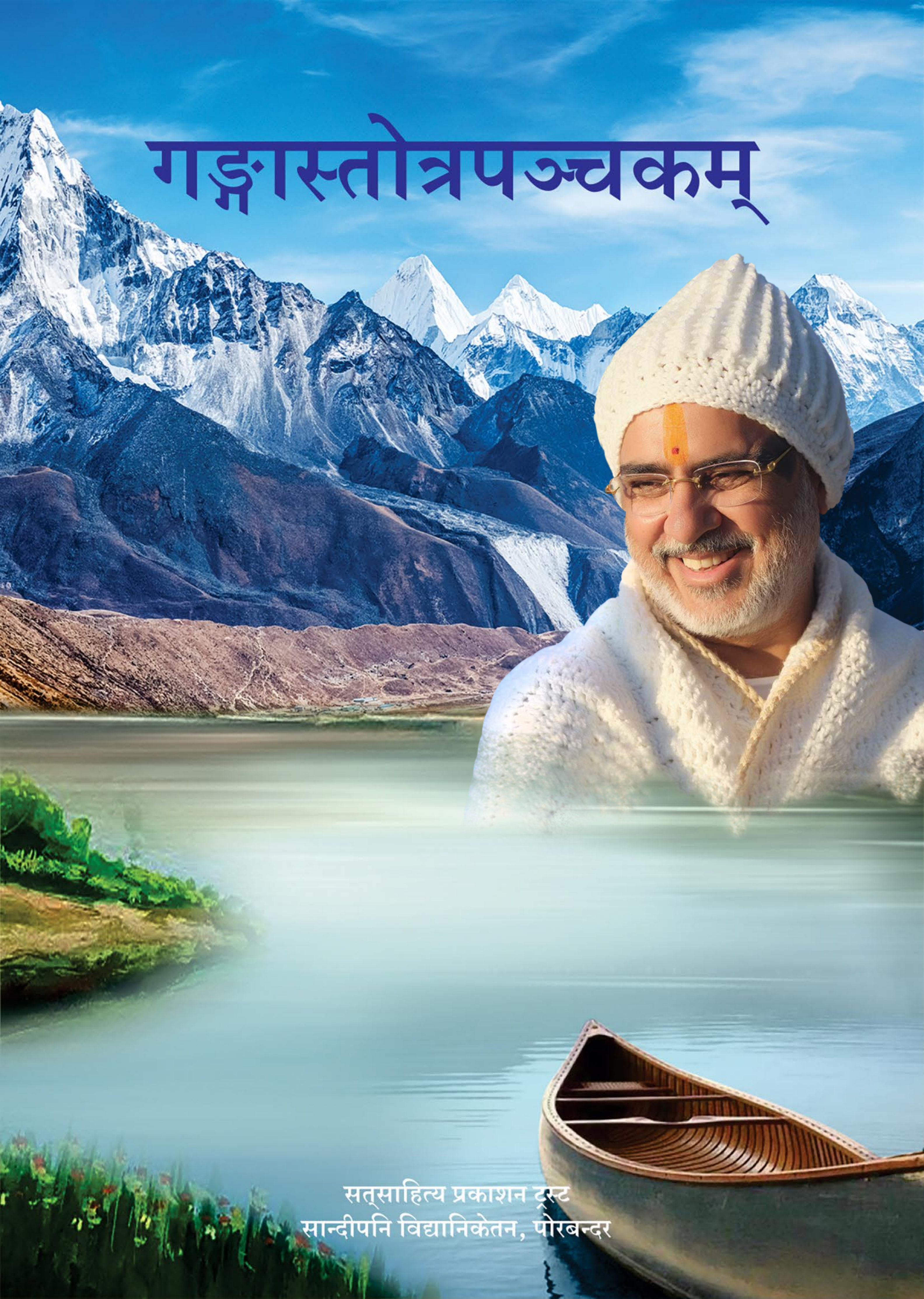

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट
सान्दीपनि विद्यानिकेतन, पोरबन्दर

श्री चंद्रमौलीश्वर महादेव, श्रीहरि मन्दिर, पोरबन्दर

श्रीगङ्गास्तोत्रम्

देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे त्रिभुवनतारिणि तरलतरङ्गे ।
शङ्करमौलिविहारिणि विमले मम मतिरास्तां तव पदकमले ।। १ ।।

हे देवि गंगे ! तुम देवगणकी ईश्वरी हो, हे भगवति ! तुम त्रिभुवनको तारनेवाली, विमल और तरल तरंगमयी तथा शंकरके मस्तकपर विहा करनेवाली हो। हे मातः ! तुम्हारे चरणकमलोंमें मेरी मति लगी रहे ।। १ ।।

भागीरथि सुखदायिनि मातस्तव जलमहिमा निगमे ख्यातः ।
नाहं जाने तव महिमानं पाहि कृपामयि मामज्ञानम् ।। २ ।।

हे भागीरथि ! तुम सब प्राणियोंको सुख देती हो, हे मातः ! वेदशास्त्रमें तुम्हारे जलका माहात्म्य वर्णित है, मैं तुम्हारी महिमा कुछ नहीं जानता, हे दयामयि ! मुझ अज्ञानीकी रक्षा करो ।। २ ।।

हरिपदपाद्यतरङ्गिणि गङ्गे हिमविधुमुक्ताधवलतरङ्गे ।
दूरीकुरु मम दुष्कृतिभारं कुरु कृपया भवसागरपारम् ।। ३ ।।

हे गंगे ! तुम श्रीहरिके चरणोंकी चरणोदकमयी नदी हो, हे देवि ! तुम्हारी तरंगें हिम, चन्द्रमा और मोतीकी भाँति श्वेत हैं, तुम मेरे पापोंका भार दूर कर दो और कृपा करके मुझे भवसागरके पार उतारो ।। ३ ।।

तव जलममलं येन निपीतं परमपदं खलु तेन गृहीतम् ।
मातर्गङ्गे त्वयि यो भक्तः किल तं द्रष्टुं न यमः शक्तः ।। ४ ।।

हे देवि ! जिसने तुम्हारा जल पी लिया, अवश्य ही उसने परमपद पा लिया, हे मातः गंगे ! जो तुम्हारी भक्ति करता है, उसको यमराज नहीं देख सकता (अर्थात् तुम्हारे भक्तगण यमपुरीमें न जाकर वैकुण्ठमें जाते हैं) ।। ४ ।।

पतितोद्धारिणि जाह्नवि गङ्गे खण्डितगिरिवरमण्डितभङ्गे ।
भीष्मजननि हे मुनिवरकन्ये पतितनिवारिणि त्रिभुवनधन्ये ।। ५ ।।

हे पतितजनोंका उद्धर करनेवाली जह्नुकुमारी गंगे ! तुम्हारी तरंगे गिरिराज हिमालयको खण्डित करके बहती हुई सुशोभित होती हैं, तुम भीष्मकी जननी और जह्नुमुनिकी कन्या हो, पतितपावनी होनेके कारण तुम त्रिभुवनमें धन्य हो ।। ५ ।।

कल्पलतामिव फलदां लोके प्रणमति यस्त्वां न पतति शोके।
पारावारविहारिणि गङ्गे विमुखयुवतिकृततरलापाङ्गे ॥ ६ ॥

हे मातः ! तुम इस लोकमें कल्पलतकी भाँति फल प्रदान करनेवाली हो, तुम्हें जो प्रणाम करता है, वह कभी शोकमें नहीं पडता, हे गंगे ! मानिनि वनितके मान चंचल कटाक्षवाली तुम समुद्रके साथ विहार करती हो ॥ ६ ॥

तव चेन्मातः स्रोतः स्नातः पुनरपि जठरे सोऽपि न जातः ।
नरकनिवारिणि जाह्नवि गङ्गे कलुषविनाशिनि महिमोत्तुङ्गे ॥ ७ ॥

हे गंगे ! जिसने तुम्हारे प्रवाहमें स्नान कर लिया, वह फिर मातृगर्भमें प्रवेश नहीं करता, हे जाह्नवि ! तुम भक्तों को नरकसे बचाती हो और उनके पापोंका नाश करती हो, तुम्हारा महात्म्य अतीव उच्च है ॥ ७ ॥

पुनरसदङ्गे पुण्यतरङ्गे जय जय जाह्नवि करुणापाङ्गे ।
इन्द्रमुकुटमणिराजितचरणे सुखदे शुभदे भृत्यशरण्ये ॥ ८ ॥

हे करुणाकटाक्षवाली जह्नुपुत्री गंगे ! मेरे अपावन अंगोंपर अपनी पावन तरंगोसे युक्त हो उल्लासित होनेवाली, तुम्हारी जय हो ! जय हो !! तुम्हारे चरण इन्द्रके मुकुटमणिसे प्रदीप्त हैं, तुम सबको सुख और शुभ देनेवाली हो और अपने सेवकको आश्रय प्रदान करती हो ॥ ८ ॥

रोगं शोकं तापं पापं हर मे भगवति कुमतिकलापम् ।
त्रिभुवनसारे वसुधाहारे त्वमसि गतिर्मम खलु संसारे ॥ ९ ॥

हे भगवति ! तुम मेरे रोग, शोक, ताप, पाप और कुमति-कलापको हर लो, तुम त्रिभुनवकी सार और वसुधाका हार हो, हे देवि ! इस संसारमें एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो ॥ ९ ॥

अलकानन्दे परमानन्दे कुरु करुणामयि कातरवन्द्ये ।
तव तटनिकटे यस्य निवासः खलु वैकुण्ठे तस्य निवासः ॥ १० ॥

हे दु:खियोंकी वन्दनीया देवि गंगे ! तुम अलकापुरीको आनन्द देनेवाली और परमानन्दमयी हो, तुम मुझपर कृपा करो, हे मातः ! जो तुम्हारे तटके निकट वास करता है, वह मानो वैकृण्ठमें ही वास करता है ॥ १० ॥

वरमिह नीरे कमठो मीनः किं वा तीरे शरटः क्षीणः ।
अथवा श्वपचो मलिनो दीनस्तव न हि दूरे नृपतिकुलीनः ॥ ११ ॥

हे देवि ! तुम्हारे जलमें कच्छप या मीन बनकर रहना अच्छा है, तुम्हारे तीरपर दबला-पतला गिरगिट (कृकलास) बनकर रहना अच्छा है या अति मलिन दीन चाण्डाकुलमें जन्म ग्रहण कर रहना अच्छा है, परंतु (तुमसे) दूर कुलीन नरपति होकर रहना भी अच्छा नहीं ॥ ११ ॥

भो भुवनेश्वरि पुण्ये धन्ये देवि द्रवमयि मुनिवरकन्ये ।
गङ्गस्तवमिमममलं नित्यं पठति नरो यः स जयति सत्यम् ॥ १२ ॥

हे देवि ! तम त्रिभुवनकी ईश्वरी हो, तुम पावन और धन्य हो, जलमयी तथा मुनिवरकी कन्या हो । जो प्रतिदिन इस गंगास्तोत्रका पाठ करता है, वह निश्चय ही संसारमें जयलाभ कर सकता है ॥ १२ ॥

येषां हृदये गङ्गाभक्तिस्तेषां भवति सदा सुखमुक्तिः ।
मधुराकान्तापज्झटिकाभिः परमान्दकलितललिताभिः ॥ १३ ॥

जिनके हृदयमें गंगाके प्रति अचला भक्ति है, वे सदा ही आनन्द और मुक्तिलाभ करने हैं; यह स्तुति परमानन्दमयी सुललित पदावलीसे युक्त, मधुर और कमनीय है ॥ १३ ॥

गङ्गस्तोत्रमिदं भवसारं वाञ्छितफलदं विमलं सारम् ।
शङ्करसेवकाशङ्कररचितं पठति सुखी स्तव इति च समाप्तः ॥ १४ ॥

इस असार संसारमें उक्त गंगास्तोत्र ही निर्मल सारवान् पदार्थ है, यह भक्तोंको अभिलाषित फल प्रदान करता है; शंकरके सेवक शंकराचार्यकृत इस स्तोत्रको जो पढता है, वह सुखी होता है - इस प्रकार यह स्तोत्र समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीगङ्गास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित श्रीगंगास्तोत्र सम्पूर्ण हुआ ॥

श्रीगङ्गाष्टकम्

भगवति तव तीरे नीरमात्राशनोऽहं विगतविषयतृष्णः कृष्णमाराधयामि ।
सकलकलुषभङ्गे स्वर्गसोपानसङ्गे तरलतरतरङ्गे देवि गङ्गे प्रसीद ॥ १ ॥

हे देवि ! तुम्हारे तीरपर केवल तुम्हारे जलका पान करता हुआ, विषय-तृष्णासे रहित हो, मैं श्रीकृष्णचन्द्रकी आराधना करूँ। हे सकल पापविनाशिनि ! स्वर्गसोपानरूपिणि ! तरलतरतरंगिणि ! देवि गंगे ! मुझपर प्रसन्न हो ॥ १ ॥

भगवति भवलीलामौलिमाले तवाम्भः कणमणुपरिमाणं प्राणिनल यो स्पृशन्ति ।
अमरनगरनारीचामरग्राहिणीनां विगतकलिकलङ्कातङ्कमङ्के लुठन्ति ॥ २ ॥

हे भगवति ! तुम महादेवजीके मस्तककी लीलामयी माला हो, जो प्राणी तुम्हारे जलकणके अणुमात्रको भी स्पर्श करने हैं, वे कलिकलंकके भयको त्यागकर, देवपुरीकी चामरधारिणी अप्सराओंकी गोदमें शयन करते हैं ॥ २ ॥

ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती ।
क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूर्निर्भरं भर्त्सयन्ती
पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित्पावनी नः पुनातु ॥ ३ ॥

ब्रह्माण्डको फोडकर निकलनेवाली, महादेवजीकी जटा-लताको उल्लसित करती हुई, स्वर्गलोकसे गिरती हुई, स्वर्गलोकसे गिरती हुई, सुमेरुकी गुफा और पर्वतमालासे झडती हुई, पृथ्वीपर लोटती हुई, पापसमूहकी सेनाको कडी फटकार देती हुई, समुद्रको भरती हुई, देवपुरीकी पवित्र नदी गंगा हमं पवित्र करे ॥ ३ ॥

मज्जन्मातङ्गकुम्भच्युतमदमदिरामोदमत्तालिजालं
स्नानैः सिद्धाङ्गनानां कुचयुगविगलत्कुङ्कुमासङ्गपिङ्गम् ।
सायंप्रातर्मुनीनां कुशकुसुमचयैश्छन्नतीरस्थनीरं
पायान्नो गाङ्गमम्भः करिकलभकराक्रान्तरंहस्तरङ्गम् ॥ ४ ॥

स्नान करते हुए हाथियोंके कुम्भस्थलसे झरते हुए मदरूपी मदिराकी गन्धके कारण मधुपवृन्द जिससे मतवाले हो रहे हैं, सिद्धोंकी स्त्रियोंके स्तनोंसे बहे हुए कुंकुमके मिलनेसे जो पिंगलवर्ण हो रहा है तथा सायं-प्रात: मुनियोंद्वारा अर्पित कुश और पुष्पोंके समूहसे जो किनारेपर ढका हुआ है, हाथियोंके बच्चोंकी सूँडोंसे जिनकी तरंगोंका वेग आक्रान्त हो रहा है, वह गंगाजल हमारा कल्याण करे ॥ ४ ॥

आदावादिपितामहस्य नियमव्यापारपात्रे जलं
पश्चात्पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम्
भूयः शम्भुजटाविभूषणमणिर्जह्नोर्महर्षेरियं
कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते ॥ ५ ॥

जह्नु महर्षिकी कन्या, पापनाशिनी भगवती भागीरथी, पहले ब्रह्माके कमण्डलुमें जलरूपसे फिर शेषशायी भगवान्‌के पवित्र चरणोदकरूपसे और तदनन्तर महादेवजीकी जटाको सुशोभित करनेवाली मणिरूपसे दीख रही है ॥ ५ ॥

शैलेन्द्रादवतारिणी निजजले मज्जज्जनोत्तारिणी
पारावारविहारिणी भवभयश्रेणीसमुत्सारिणी ।
शेषाहेरनुकारिणी हरशिरोवल्लीदलाकारिणी
काशीप्रान्तविहारिणी विजयते गङ्गा मनोहारिणी ॥ ६ ॥

हिमालयसे उतरनेवाली, अपने जलमें गोता लगानेवालोंका उद्धार करनेवाली, समुद्रविहारिणी, संसार-संकटोंका नाश करनेवाली, (विस्तारमें) शेषनागका अनुकरण करनेवाली, शिवजीके मस्तकपर लताके समान सुशोभित काशीक्षेत्रमें बहनेवाली, मनोहारिणी गंगाजी विजयिनी हो रही हैं ॥ ६ ॥

कुतो वीचिर्वीचिस्तव यदि गता लोचनपथं त्वमाणीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि ।
त्वदुत्सङ्गे गङ्गे पतति यदि कायस्तनुभृतां तदा मातः शातक्रतवपदलाभोऽप्यतिलघुः ॥ ७ ॥

यदि तुम्हारी तरंग नेत्रोंके सामने आ जाय, तो फिर संसारकी तरंग कहाँ रह सहती है ? तुम्हारे थोडे-से जलका पान करनेपर तुम वैकुण्ठलोकमें निवास देती हो, हे गंगे ! यदि जीवोंका शरीर तुम्हारी गोदमें छूट जाता है, तो हे मातः ! उस समय इन्द्रपदकी प्राप्ति भी अत्यन्त तुच्छ मालूम होती है ॥ ७ ॥

गङ्गे त्रैलोक्यसारे सकलसुरवधूधौतविस्तीर्णतोये
पूर्णब्रह्मस्वरूपे हरिचरणरजोहारिणी स्वर्गमार्गे ।
प्रायश्चित्तं यदि स्यात्तव जलकणिका ब्रह्महत्यादिपापे
कस्त्वां स्तोतुं समर्थस्त्रिजगदघहरे देवि गङ्गे प्रसीद ॥ ८ ॥

तीनों लोकोंकी सार, सर्वदेवांगनाएँ जिसमें स्नान करती हैं, ऐसे विस्तृत जलवाली, पूर्ण ब्रह्मस्वरूपिणी, स्वर्ग-मार्गमें भगवान्‌के चरणोंकी धूलि धोनेवाली हे गंगे ! जब तुम्हारे जलका एक

कणमात्र ही ब्रह्महत्यादि पापोंका प्रायश्चित है तो हे त्रैलोक्यपापनाशिनि ! तुम्हारी स्तुति करनेमें कौन समर्थ है ? हे देवि गंगे ! प्रसन्न हो ॥ ८ ॥

मातर्जाह्नवि शम्भुसङ्गवलिते मौलौ निधायाज्जलिं
त्वत्तीरे वपुषोऽवसानसमये नारायाङ्घ्रिद्वयम् ।
सानन्दं स्मरतो भविष्यति मम प्राणप्रयाणोत्सवे
भूयाद्भक्तिरविच्युताहरिहराद्वैतात्मिका शाश्वती ॥ ९ ॥

हे शिवकी संगिनी मात: गंगे ! शरीर शान्त होनेके समय प्राण-यात्राके उत्सवमें, तुम्हारे तीरपर, सिर नवाकर हाथ जोडे हुए, आनन्दसे भगवान्‌के चरणयुगलका स्मरण करते हुए मेरी अविचलभावसे हरि-हरमें अभेदात्मिका नित्य भक्ति बनी रहे ॥ ९ ॥

गङ्गष्टकमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतो नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १० ॥

जो पुरुष शुद्ध होकर इस पवित्र श्रीगंगाष्टकका पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर वैकुण्ठलोकमें जाता है ॥ १० ॥

गङ्गालहरी

समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि तन्महैश्वर्यं लीलाजनितजगतः खण्डपरशोः ।
श्रुतीनां सर्वस्वं सुकृतमथ मूर्तं सुमनसां सुधासौंदर्यं ते सलिलमशिवं नः शमयतु ॥ १ ॥

(हे माँ !) महेश्वर शिव की लीला जनित इस सम्पूर्ण वसुधा की आप ही समृद्धि और सौभाग्य हो, वेदो का सर्वस्व सारतत्व भी आप ही हो, मूर्तिमान दिव्यता की सौंदर्य-सुधायुक्त आपका जल, हमारे सारे अमंगल का शमनकारी हो ॥ १ ॥

दरद्रिणां दैन्यं दुरितमथ दुर्वासनहृदां द्रुतं दूरीकुर्वन् सकृदपि गतो दष्टिसरणिम् ।
अपि रागाविद्याद्रुमदलनदीक्षागुरुरिह प्रवाहस्ते वारां श्रियमयमपारां दिशतु नः ॥ २ ॥

आपकी दृष्टि मात्र से ही हृदय की दुर्वासनाएं और द्ररिद्रों के दैन्य शीघ्र दूर हो जाते हैं। राग और अविद्या के गुल्म आपके गुरुसम अपार प्रवाह की दीक्षा से समूल नष्ट हो जाएँ ओर हमें अतुलनीय श्रेय की प्राप्ति हो ॥ २ ॥

उदञ्चन्मार्तण्डस्फुटकपटहेरम्बजननीकटाक्षव्याक्षेपक्षणजनितसंक्षोमनिवहाः ।
भवन्तु त्वङ्गन्तो हरशिरसि गङ्गतनुमुवस्तरङ्गाः प्रोत्तुङ्गा दुरितभयभङ्गाय भवताम् ॥ ३ ॥

गणेशजननी की बालार्क कटाक्षद्रष्टि से शिव जटाओं में बद्ध गंगा की संक्षोभित उत्ताल तरंगे, कठिन अद्ययुक्तभुवनभय भंगकारी हों ॥ ३ ॥

तवालम्बादम्ब स्फुरदलघुगर्वेण सहसा मया सर्वेऽवज्ञासरणिमथ नीताः सुरगणाः ।
इदानीमौदास्यं भजसि यदि भागीरथि तदा निराधारो हा रोदिमि कथय केषामिह पुरः ॥ ४ ॥

आपके अवलंबन के आश्रय से सहसा अति गर्वित हो मैंने सभी अन्य देवों की अवज्ञा करली, ऐसे में यदि आप मुझसे उदासीन हो गयी तो मैं निराधार किसके आगे अपना रोना रोऊँ ॥ ४ ॥

स्मृतिं याता पुंसामकृतसुकृतानामपि च या हरत्यन्तस्तन्द्रां तिमिरमिव चन्द्रांशुसरणिः ।
इयं सा ते मूर्तिः सकलसुरसंसेव्यसलिला ममान्तः सन्तापं त्रिविधमपि पापं च हरताम् ॥ ५ ॥

सूर्य रश्मियों की उपस्थिति मात्र से ही जैसे तम का नाश हो जाता है, आपके स्मरण मात्र से ही पुण्यहीनों की भी कुंठाओं का शमन हो जाता है। दिव्यात्माओं द्वारा भी अभिलाषित आपका पावन जल मेरे भी त्रिविध पाप संताप को दूर कर दे ॥ ५ ॥

अपि प्राज्यं राज्यं तृणमिव परित्यज्य सहसा विलोलद्वानीरं तव जननि तीरं श्रितवताम् ।
सुधातः स्वादीयस्सलिलभरमातृप्ति पिबतां जनानामानन्दः परिहसति निर्वाणपदवीम् ॥ ६ ॥

बडे-बडे साम्राज्यों का तृणवत त्याग करके, आपके तीर का आश्रय ले कर तृण विलोलित आपके जल के आतृप्त अमृतपान के आनंद की तुलना में तो निर्वाणपद भी हेय है ॥ ६ ॥

प्रभाते स्नातीनां नृपतिरमणीनां कुचतटीगतो यावन्मातर्मिलति तव तोयैर्मृगमदः ।
मृगास्तावद्वैमानिकशतसहस्त्रैः परिवृता विशन्ति स्वच्छन्दं विमलवपुषो नन्दनवनम् ॥ ७ ॥

राजमहिषियों द्वारा प्रातःकाल आप में स्नान से कस्तूरीलेपित वृक्षों से आपके जल में मृगमद अर्पित हो जाने के पुण्य से वे मृग अनायास ही सहस्त्रशत विमानों से परिवृत हो दिव्यरूप प्राप्त कर नंदनवन में स्वच्छंद प्रवेश और विचरण करने हैं ॥ ७ ॥

स्मृतं सद्यः स्वान्तं विरचयति शान्तं सकृदपि प्रगीतं यत्पापं झटिति भवतापं च हरति ।
इदं तद्गङ्गेति श्रवणरमणीयं खलु पदं मम प्राणप्रान्ते वदनकमलान्तर्विलसतु ॥ ८ ॥

स्मरण करते ही जो तुरंत मन में प्रशांति रच देता है, गान करने से जो अीवलम्ष भवताप हर लेता है, श्रवण मात्र से 'गंगा' यह नाम मेरे मन के कमलवन में और मुख में प्राणांत तक विलास करता रहे ॥ ८ ॥

यदन्तः खेलन्तो बहुलतरसन्तोषभरिता न काका नाकाधीश्वरनगरसाकाङ्क्षमनसः ।
निवासाल्लोकानां जनिमरणशोकापहरणं तदेतत्ते तीरं श्रमशमनधीरं भवतु नः ॥ ९ ॥

और तो ओर, आपकी सन्निधि में कौवे भी इतने संतोष से भरे रमते हैं कि उनको अब स्वर्ग की भी चाहना नहीं । आपके तीर का निवास जन्म मरण के शोक का तो हरण करता ही हैं, इसका नैकट्य भी निष्ठावानों का श्रमहारी हो ॥ ९ ॥

न यत् साक्षाद्वेदैरपि गलितभेदैरवसितं न यस्मिन् जीवानां प्रसरति मनोवागवसरः ।
निराकारं नित्यं निजमीहमनिर्वासिततमो विशुद्धं यत्तत्त्वं सुरतटिनि तत्त्वं न विषयः ॥ १० ॥

आप नित्य निराकार तमोहारी विशुद्ध दिव्य तत्त्व हो, जीवों के मन वाणी के विषयों से परे, अगोचर हो । सारे भेदों को पार करके साक्षात् वेद भी आपका निरूपण नहीं कर सकते ॥ १० ॥

महादानैर्ध्यानैर्बहुविधवितानैरपि च यन् न लभ्यं घोरभिः सुविमलतपोराशिभिरपि ।
अचिन्त्यं तद्विष्णोः पदमखिलसाधारणतया ददाना केनासि त्वमिह तुलनीया कथन नः ॥ ११ ॥

बहुविधियों से दान, ध्यान बलिदान और घोर ताप से भीजो अचिन्त्य विष्णु पद अप्राप्य रहता है, वो भी आप सहजता से प्रदान कर देती हो तो भला आप किससे तुलनीय हैं ?

नृणामीक्षामात्रादपि परिहरन्त्या भवभयं शिवायास्ते मूर्तेः क इह महिमानं निगदतु ।
अमर्षाम्लानायाः परममनुरोधं गिरिभुवो विहाय श्रीकण्ठः शिरसि नियतं धारयति याम् ॥ १२ ॥

कोई मनुष्य आपको देख भर ले तो भवभय से निर्भय हो जाता है, ऐसी आपकी महिमा की कौन प्रशस्ति कर सकता है ? इसी कारण, अमर्ष से अम्लान हुई पार्वतीजी की भी अनदेखी करते हुए सदाशिव आपको सदा अपने मस्तक पर धारण किये रहते हैं ॥ १२ ॥

विनिन्द्यान्युन्मत्तैरपि च परिहार्याणि पतितैरवाच्यानि व्रात्यैः सपुलकमपास्यानि पिशुनैः ।
हरन्ती लोकानामनवरतमेनांसि कियतां कदाप्यश्रान्ता त्वं जगति पुनरेका विजयसे ॥ १३ ॥

निन्दितों द्वारा भी निंदनीय पापियों को भी आप तार देती हो, जो पतितों द्वारा भी घृणित और नीचों द्वारा भी त्याज्य हैं, ऐसों को भी आप निरंतर आश्रय देते हुए भी श्रमित न होकर इस विश्व में सदैव एकमात्र विजयमान रहती हो ॥ १३ ॥

स्खलन्ती स्वर्लोकादवनितलशोकापहृतये जटाजूटग्रन्थौ यदसि विनिबद्धा पुरभिदा ।
अये निर्लोभानामपि मनसि लोभं जनयतां गुणानामेवायं तव जननि दोषः परिणतः ॥ १४ ॥

माँ ! शोकग्रस्तों को तारने के लिए आपके स्वयं को अपने दिव्यलोक मे पत्तन करती हुई को निर्लोभी शिव ने अपनी जटाजूट ग्रंथियों में आबद्ध करके मानो स्वयं में लोभ का दोष आरोपित कर आपकी महिमा को निरुपित किया ॥ १४ ॥

जडानन्धान् पङ्गून् प्रकृतिबधिरानुक्तिविकलान् ग्रहग्रस्तानस्ताखिलदुरितनिस्तारसरणीन् ।
निलिम्पैर्निर्मुक्तानपि च निरयान्तर्निपततो नरानम्ब त्रातुं त्वमिह परमं भेषजमसि ॥ १५ ॥

मूर्खों, अन्धों, पंगुओं, मूक बधिर और ग्रहादि दोषों से ग्रस्त, जिनका पाप से निस्तारण का कोई मार्ग न हो, देवताओं द्वारा परित्यक्त उन नर्कगामियों की, हे माँ, आप ही परम उद्धारक औषधि हो ॥ १५ ॥

स्वभावस्वच्छानां सहजशिशिराणामयमपामपारस्ते मातर्जयति महिमा कोऽपि जगति ।
मुदायं गायन्ति द्युतलमनवद्यद्युतिभृतः समासाद्याद्यापि स्फुटपुलकसान्द्राः सगरजाः ॥ १६ ॥

माँ ! आपके स्वच्छ शीतल जल की इस जगत में अपार महिमा अवर्णनीय है। निष्कलंक कीर्ति से स्वर्ग प्राप्त किये सगरपुत्र आज भी पुलकित रोमावलीयुक्त हो आज भी आपकी महिमा का गान करते हैं ॥ १६ ॥

कृतक्षुद्रैनस्कानथ झटिति सन्तप्तमनसः समुद्धर्तुं सन्ति त्रिभुवनतले तीर्थनिवहाः ।
अपि प्रायश्चित्तप्रसरणथातीतचरितान्नरानूरीकर्तुं त्वमिव जननि त्वं विजयसे ॥ १७ ॥

छोटे मोटे पापों से शीघ्र क्षुब्ध मन वालों के परित्राण के लिए तो हे माँ ! इस विश्व में अनेको पवित्र तीर्थ व सरिताएँ हैं, परन्तु जघन्य पापों और पापियों के उद्धार के लिए तो एक मात्र आप ही हैं ॥ १७ ॥

निधानं धर्माणां किमपि च विधानं नवमुदां प्रधानं तीर्थानाममलपरिधानं त्रिजगतः ।
समाधानं बुद्धेरथ खलु तिरोधानमधियां श्रियामाधानं नः परिहरतु तापं तव वपुः ॥ १८ ॥

सर्व धर्मों की निधान, नव प्रसन्नता की विधान, त्रिभुवन में पवित्रवारि तीर्थों में प्रधान और कुविचारों का तिरोधान कर बृद्धि को समग्र समाधान प्रदान करने वाली माँ, आप ऐश्वर्यों का भंडार हो । आपका वपु हमारे सब तापों का शमन करे ॥ १८ ॥

पुरो धावं धावं द्रविणमदिराघूर्णितदशां महीपानां नानातरुणतरखेदस्य नियतम् ।
ममैवायं मन्तुः स्वहितशतहन्तुर्जडधियो वियोगस्ते मातर्यदिह करुणातः क्षणमपि ॥ १९ ॥

मदोन्मत्त शासकों के सामने चाटुकारिता करते करतें मुझमे नाना भांति के विकार आ गए हैं और जड बृद्धि हो मैं स्वयं का ही हितनाशक हो गया, क्योंकि क्षण भर का भी आपकी करुणा से वियोग मेरी ही भूल है ॥ १९ ॥

मरुल्लीलालोलल्लहरिलुलिताम्भोजपटलीस्वखलत्पांसुव्रातच्छुरविसरत्कौङ्कमरुचि ।
सुरस्त्रीवक्षोजक्षरदगरुजम्बालजटिलं जलं ते जम्बालं मम जननजालं जरयतु ॥ २० ॥

वायु की लीला से दोलित पंकजों की पतित केसर से केसरिया और सुर लंलनाओं के वक्षो से क्षरित अगरु से प्रगाढ हुआ आपका जल मेरे जन्म-मृत्यु जाल का निवारक हो ॥ २० ॥

समुत्पत्तिः पद्मारमदपद्मामलनखान्निवासः कन्दर्पप्रतिभटजटाजूटवने ।
अथाऽयं व्यासङ्गो हतपतितनिस्तारविधौ न कस्मादुत्कर्षस्त्व जननि जागर्तु जगति ॥ २१ ॥

रमारमण विष्णु के पदकंजों के अमल श्रीनखों से निसरित, मदनारी महादेव के जटाजूट-भवन निवासिनी माँ, आप दुखियों और पतितों के उद्धार में निरत हैं । तो फिर इस जगत की जाग्रति और उन्नति कैसे न होगी ! ॥२१ ॥

नगोभ्यो यान्तीनां कथय तटिनीनां कतमया पुराणां संहर्तुः सुरधुनि कपर्दोऽधिरुरुहे।
कया वा श्रीमर्तुः पदकमलमक्षालि सलिलैस्तुलालेशो यस्यां नव जननि दीयेत कविभिः ॥ २२ ॥

हे देवसरिता ! और कौन नदी नगेन्द्र से निकल कर त्रिपुरारी की अलकों पे चढी है ? या जिसने रमापति केचरण कमलों का प्रक्षालन किया है ? और हो भी तो क्या कोई कवि उसकी आपसे लेश मात्र भी तुलना कर सकता है ? ॥ २२ ॥

विधत्तां निःशङ्कं निरवधि समाधिं विधिरहो सुखं शेषे रेतां हरिरविरतं नृत्यतु हरः ।
कृतं प्रायश्चित्तैरलमथ तपोदानयजनैः सवित्री कामानां यदि जगति जागर्ति जननी ॥ २३ ॥

जगत में जब आप जाग्रत हो कामनापूर्ण कर ही रही हैं, तो भले ब्रह्मा निरवधि समाधिस्थ हो जाएँ, विष्णु सुख से शेष शयन करें या शिव अविरत लास्य करें, तप दान बलि यज्ञादि युक्त प्रायश्चित परिष्कार की भी कोई आवश्यकता नहीं है॥ २३ ॥

अनाथः स्नेहार्द्रां विगलितगतिः पुण्यगतिदां पतन् विश्वोद्धर्त्रीं गदविगलितः सिद्धभिषजम्।
सुधासिन्धुं तृष्णाकुलितहृदयो मातरमयं शिशुः सम्प्राप्तस्त्वामहमिह विदध्याः समुचितम्॥ २४॥

मुझ पगभ्रष्ट अनाथ पर आप स्नेहाद्र हो कर पुन्यगति प्रदायिनी हों। आप पतित को विश्व में अभ्यूदयी बनाने वाली, रुग्ण को सिद्धौषधिदायी, तृष्णातुर हृदय के लिए सुधासिंधु रूपा हैं, हे माँ, मैं बाल रूप से आपके पास आया हूँ, आप जैसा उचित समझें, वैसा करें॥ २४ ॥

विलीनो वै वैवस्वतनगरकोलाहलभरो गता दूता दूरं क्वचिदपि परेतान् मृगयितुम्।
विमानानां व्रातो विदलयति वीथिर्दिविषदां कथा ते कल्याणी यदवधि महीमण्डलमगात्॥ २५ ॥

हे शुभे ! जिस दिन से आपकी कथा धरती पर पहुंची है, यमपुरी का कोलाहल शांत हो गया है, दूतों को उन्हें प्राप्य मृतकों की खोज में दूर-दूर जाना पडता है। दिव्यों के नगर की गलियाँ यानों की घर्घराहट से व्याप्त हो गई हैं॥ २५ ॥

स्फुरत्कामक्रोधप्रबलतरज्जातजटिलज्वरज्वालाजालज्जलितवपुषां नः प्रतिदिनम्।
हरन्तां सन्तापं कमपि मरुदुल्लासलहरिच्छटाचञ्चत्पाथः कणसरणयो दिव्यसरितः ॥ २६ ॥

हे दिव्यसरित ! उल्लसित मारुत द्वारा आपकी लहरों से विसरित जल कण, काम और क्रोध की प्रबल ज्वालाओं से प्रतिदिन दग्ध हमारे तन के अवर्णनीय ताप को दूर करे॥ २६ ॥

इदं हि ब्रह्माण्डं सफलभुवनाभोगभवनं तरङ्गैर्यस्यान्तर्लुठति परितस्तिन्दुकमिव ।
स एष श्रीकण्ठप्रविततजटाजूटजटिलो जलानां सङ्घातस्तव जननि तापं हरतु नः ।। २७ ।।

माँ आपका जल, जिसने पूरे ब्रह्माण्ड को तिन्दुक फल की भांति प्लावित कर दिया था, परन्तु शिव की खोली हुई जटाओं के जाल में आबद्ध हो के रह गया, हमारे लिए तापहारी हो ।। २७ ।।

त्रपन्ते तीर्थानि त्वरितमिह यस्योद्धृतिविधौ करं कर्णे कुर्वन्त्यपि किल कपालिप्रभृतयः ।
इमं त्वं मामम्ब त्वमियमनुकम्पार्द्रहृदये पुनाना सर्वेषामघमथनदर्पं दलयसि ।। २८ ।।

मुझ जैसे पतित को, जिसे तारने में शिव जैसे देव ने भी कानों पर हाथ रख कर और अनेक तीर्थों ने लिज्जत हो कर अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी, अपनी अनुकम्पा से तार कर, हे दयार्द्र हृदया माँ ! आपने तो जैसे सभी तारकों के पापहारिता के दर्प का दलन कर दिया ।। २८ ।।

श्वपाकानां व्रातैरमितविचिकित्साविचलितैर्विमुक्तानामेकं किल सदनमेनः परिषदाम् ।
अहो मामुद्धर्तुं जननि घटयन्त्याः परिकरं तव श्लाघां कर्तुं कथमिव समर्थो नरपशुः ।। २९ ।।

मैं तो दुश्चिंताओं से भरे चांडालों से भी त्यक्त पापों का भण्डार हूँ, फिर भी आप मेरे उद्धार तत्पर हैं, आपकी स्तुति करने में मुझ जैसा नर पशु कैसे समर्थ होगा ? ।। २९ ।।

न कोऽप्येतावन्तं खलु समयमारभ्य मिलितो यदुद्धारादाराद्भवति जगतो विस्मयभरः ।
इतीमामीहां ते मनसि चिरकालं स्थितवतीमयं सम्प्राप्तोऽहं सफलयितुमम्ब प्रणय नः ।। ३० ।।

अनादि काल से हे माँ, आप सोचती रही हैं की क्या कोई ऐसा पतित भी मिलेगा जिसके उद्धार से सम्पूर्ण विश्व विस्मित हो जाय। अंततः आपकी इसा इच्छापूर्ती हेतु प्रथम व्यक्ति के रूप में आपको मैं प्राप्त हो ही गया ।। ३० ।।

श्ववृत्तिव्यासङ्गो नियतमथ मिथ्याप्रलपनं कुतर्केश्वभ्यासः सततपरपैशुन्यमननम् ।
अपि श्रावं श्रावं मम तु पुनरेवं गुणगणानृते त्वत्को नाम क्षणमपि निरीक्षेत वदनम् ।। ३१ ।।

कुतर्की की भांति हर समय मिथ्या प्रलापों में दूसरों की निंदा करते हुए मैंने श्वान वत जीवन जिया है। मेरे इन गुणों को जान कर, आपके सिवा कौन है जो क्षण मात्र के लिए भी मेरी और देखे ? ।। ३१ ।।

विशालाभ्यामाभ्या किमिह नयनाभ्यां खलु फलं न याभ्यामालीढा परमरमणीया तव तनुः ।
अयं हि न्यक्कारो जननि मनुजस्य श्रवणयोर्ययोर्नान्तर्यातस्तव लहरिलीलाकलकलः ।। ३२ ।।

चाहे कितनी ही आभा से व्याप्त विशाल क्यों न हो, वो नेत्र ही क्या जिन्होंने आपके परम रमणीय स्वरुप को ना देखा ! धिक् उन मनुष्यों के कानों को जिनमे आपकी लीला लहरी की कलकल न पडी ! ।। ३२ ।।

विमानैः स्वच्छन्दं सुरपुरमयन्ते सुकृतिनः पतन्ति द्राक् पापा जननि नरकान्तः परवशाः ।
विभागोऽयं नस्मिन्नशुभमयमूर्तौ जनपदे न यत्र त्वे लीलादलितमनुजाशेषकलुषा ।। ३३ ।।

ये तो आप से हीन जनपदों की रीत है कि पुण्यवान सुरपुर जाने और पापी परवश हो शीघ्र नारकीय हो जाते हैं। आपकी लीलास्थली में ऐसा नहीं है क्योंकि यहाँ किसी में भी कोई कलुष बचता ही नहीं ! ।। ३३ ।।

अपि घ्नन्तो विप्रानविरतमुशन्तो गुरुसतीः पिषन्तो मैरेयं पुनरपि हरन्तश्च कनकम् ।
विहाय त्वय्यन्ते तनुमतनुदानाध्वरजुषामुपर्यम्ब क्रीडन्त्यखिलसुरसम्भावितपदाः ।। ३४ ।।

ब्रह्महत्या, गुरुतिय गमन, सुरापान, और तो और स्वर्ण चोरी जैसे जघन्य पाप करने वाले भी यदि आपकी सन्निधि में देहत्याग करते हैं तो वे भी दान बलि आदि सत्कर्म कर स्वार्गादि प्राप्त करने वालों से भी ऊँचे सुर सम्मानित दिव्य पद प्राप्त कर लेते हैं।। ३४ ।।

अलभ्यं सौरभ्यं हरति सततं यः सुमनसां क्षणादेव प्राणानपि विहरशस्त्रक्षतहृदाम् ।
त्वदीयानां लीलाचलितलहरीणां व्यतिकरात् पुनीते सोऽपि द्रागहह पवमानस्त्रिभुवनम् ।। ३५ ।।

अहो, पुष्प सौरभयुक्त दुर्लभ पवन भी वियोगपीडा और शस्त्रघात पीडितों के प्राण क्षण में हर लेती है, वह भी आपकी अठखेलियाँ करती लहरों का स्पर्श पा तत्क्षण त्रिभुवन पावनी हो जाती है ।। ३५ ।।

कियन्तः सन्त्येके नियतमिहलोकार्थघटकाः परे पूतात्मानः कति च परलोकप्रणायिनः ।
सुखं शेते मातस्तव खलु कृपातः पुनरयं जगन्नाथः शश्वत्त्वयि निहितलोकत्रयभरः ।। ३६ ।।

माँ, कितने हैं जो सामान्य जन का कल्याण करने को तत्पर है ? कितनी पुण्यात्माएं परलोकाभिलाषा में हैं, ये तो आपकी करुणा है जिस पर शाश्वत त्रिभुवनतारण का भार जान कर ये जगन्नाथ निश्चिन्तता से सुख से सो रहा है ।। ३६ ।।

भवत्या हि व्रात्याधमपतितपाखण्डपरिषत् परित्राणस्नेहः श्लथयितुमशक्यः खलु यथा।
ममाप्येवं प्रेमा दुरितनिवहेष्वम्ब जगति स्वभावोऽयं सर्वैरपि खलु यतो दुष्परिहरः ॥ ३७ ॥

जैसे आप पतित, अधम और पाखंडियों के उद्धार का बिरद नहीं छोड सकती, ऐसे ही मैं भी दुष्कर्म और अधमता का त्याग नहीं कर सकता। अरे माँ, कोई कैसे अपने स्वाभाव का परित्याग कर सकता है ॥ ३७ ॥

प्रदोषान्तर्नृत्यत्पुरमथनलीलोद्धृतजटातटाभोगप्रेङ्खल्लहरिभुजसन्तानविधुतिः।
बिलक्रोडक्रीडज्जलडमरुटङ्कारसुभगस्तिरोधत्तां तापं त्रिदशतटिनीताण्डवविधि ॥ ३८ ॥

सांध्या तांडव करते भगवान शिव की झूलती जटाओं में से निराबद्ध हो कर, डमरू की टंकारवत क्रीडा करता और हरकंठ को आबद्ध करता हुआ गंगाजल, मानो स्वयं भी ताण्डव रत हो, मेरे ताप का शमन करे ॥ ३८ ॥

सदैव त्वय्येवार्पितकुशलचिन्ताभरमिमं यदि त्वं मामम्ब त्यजसि समयेऽस्मिन्सुविषमे।
तदा विश्वासोऽयं त्रिभुवनतलादस्तमयते निराधारा चेयं भवति खलु निर्व्याजकरुणा ॥ ३९ ॥

माँ, मैंने तो अपनी कुशल की सारी चिंताओं का भार सदैव आप पर ही छोडा हुआ है। यदि ऐसे विषम सयम में आप मेरा त्याग करोगी तो त्रिभुवन में आपकी अहैतुकि करुणा का विश्वास और आधार ही उठ जायेगा ॥ ३९ ॥

कपर्दादुल्लस्य प्रणयमिलदर्धाङ्गयुवतेः पुरारेः प्रेङ्खन्त्यो मृदुलतरसीमन्तसरणौ।
भवान्या सापत्न्यस्फूरितनयनं कोमलरुचा करेणाक्षिप्तास्ते जननि विजयन्तां लहरयः ॥ ४० ॥

भगवान अर्धनारीश्वर की जटाओं से निसृत आपकी लहरों का जल लगने पर किंचित झुंझलाहट द्रष्टि से देखते हुए माँ पारवती ने अपने कोमल करों से हटाया, ऐसी आपकी धन्य लहरें विजयशाली हो ॥ ४० ॥

प्रपद्यन्ते लोकाः कति न भवतीमत्रभवतीमुपाधिस्तत्रायं स्फुरति यदभीष्टं वितरसि।
शपे तुभ्यं मातर्मम तु पुनरात्मा सुरधुनि स्वभावादेव त्वय्यमितमनुरागं विधृतवान् ॥ ४१ ॥

अभीष्ट की पूर्ती हो जाने के कारण असंख्य लोग आपका आश्रय लेते हैं। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, हे माँ, मैं तो स्वभावतः ही आपका अमित अनुरागी हूँ ॥ ४१ ॥

ललाटे य लोकैरिह खलु सलीलं तिलकिता
तमो हन्तुं धत्ते तरुणतरमार्तण्डतुलनाम्।
विलुम्पन्ती सद्यो विधिलिखितदुर्वर्णसरिणं त्वदीया
सा मृत्स्ना मम हरतु कृत्स्नामपि शुचम्॥ ४२॥

लोग आपके जल की मृत्तिका का अपने ललाट पर तिलक लगाते हैं जो तमोहारि बालार्क की भांति शोभा पाता है, क्योंकि विधि द्वारा लिखित दुर्भाग्य-तम का इससे तुरंत नाश हो जाता है। ऐसी सद्य मृत्तिका मुझे शुचिता प्रदान करे॥ ४२॥

नरान् मूढांस्तत्तज्जनपदसमासक्तमनसो हसन्तः
सोल्लासं विकचकुसुमव्रातमिषतः॥
पुनानाः सौरभ्यैः सततमलिनो नित्यमलिनान् सखायो नः
सन्तु त्रिदशतटिनीतीरतरवः॥ ४३॥

देवसरित के तट पर अस्थित डोलते पुष्पद्रुमों से लदे वृक्ष मानो उन हत्भागियों पर हँसते हैं तो इससे विमुख हो अपनी ही विषम दुनिया में आसक्त रहते हैं। नित्य मलीन मधुमक्खियों को भी अपनी सुवास से सतत पवित्र करते पुष्पों वाले ये वृक्ष हमारे सखा हो॥ ४३॥

यजन्त्येके देवान् कठिनतरसेवांस्तदपरे वितानव्यासक्त यमनियमरक्ताः कतिपये।
अहं तु त्वन्नामस्मरणकृतकामास्त्रिपथगे जगज्जालं जाने जननि तृणजालेन सदशम्॥ ४४॥

कोई देवताओं को भजते तो कोई कठिन सेवा में लगते, कोई बलि देते, कुछ यम नियम में रत रहते या कठोर तपसाधन और ध्यान करते हैं। पर हे त्रिपथगामिनी, मैं तो आराम से मात्र आपका नाम स्मरण मात्र ही करता हुआ इस गजत्जाज को तृणजालवन अनुभव करता हू॥ ४४॥

अविश्रान्तं जन्मावधि सुकृतजन्मार्जनकृतां सतां श्रेयः कर्तुं कति न कृतिनः सन्ति विबुधाः।
निरस्तालम्बानामकृतसुकृतानां तु भवतीं विनाऽमुष्मिंल्लोके न परमवलोके हितकरम्॥ ४५॥

जन्म से ही सतत सत्कर्मियों के लिए श्रेयस्कर तो कई विद्वान और सुकृती होंगे। परन्तु सुकर्म ना करने वाले और अवलम्बनहीनों के उद्धार के लिए मुझे तो आपके अतिरिक्त और कोई नहीं दिखता है॥ ४५॥

पयः पीत्वा मातस्तव सपदि यातः सहचरैर्विमूढैः संरन्तुं क्वचिदपि न विश्रान्तिमगमम्।
इदानीमुत्सङ्गे मृदुपवनसञ्चारशिशिरे चिरादुन्निद्रं मां सदयहृदये शायय चिरम्॥ ४६॥

अरे माँ, तेरा पय-जल पान करके भी मैं तुरंत विमूढों के साहचर्य में चला गया, और कहीं भी विश्रांति न पाई। अब तो हे सदय हृदया माँ, मुझे सदा के लिए मृदृ शीतल पवन युक्ता अपनी पावन गोद में चिर विश्राम देदे, काफी देर बाद मेरे जीवन में आपकी प्रेम के प्रति जावृति आयी है॥ ४६ ॥

बधान द्रागेव द्रढिमरणीयं परिकरं किरीटे बालेन्दुं नियमय पुनः पन्नगगणैः।
न कुर्यास्त्वं हेलामितरजनसाधारणतया जगन्नाथस्यायं सुरधुनि समुद्धारसमयः॥ ४७॥

हे दिव्य सरिता ! अपनी द्रढ रमणिक कटि कसकर बालचंद्र मुकुट को सर्पों के द्वारा सुस्थिर कर लो। ये किसी साधारण अधम जन का प्रकररण नहीं है। इस जगन्नाथ के समुद्धार का समय आ गया है॥ ४७॥

शरच्चन्द्रश्वेतां शशिशकलश्वेतालमुकुटां करैः कुम्भाम्भोजे वरभयनिरासौ च दधतीम्।
सुधाधाराकाराभरणवसनां शुभ्रमकरस्थितां त्वां ये ध्यायन्त्युदयति न तेषां परिभवः॥ ४८॥

आप शिशिरचन्द्र की धवलता लिए हैं और वक्रचन्द्र शोभित किरीट आपकों शोभितं कर रहा है। हाथों में अभयमुद्रा युक्त हाथों में कुम्भ्सन कुमुद हैं, सुधासार रूप वसन और अलंकार धारण किये हुए आप शुभ मकर पर आरूढ है। ऐसे आपके रूप का जो ध्यान धरता है, उसका कभी परिभव नही, अभ्युदय ही शोता है॥ ४८॥

दरस्मितसमुल्लसद्वदनकान्तिपूरामृतैर्भवज्वलनभर्जितानिशमूर्जयन्ती नरान्।
चिदेकमयचन्द्रिकाचयचमत्कृतिं तन्वती तनोतु मम शन्तनोः सपदि शन्तनोरङ्गना॥ ४९॥

शांतनु अग्निनी गंगा ! तीन ताप के भवजाल से निरंतर विदग्धित जीवों को अपने स्मितमुस्कान युक्त मुख, कांतिपूरित वदनामृत और विवेक चन्द्रिका प्रसाद से शीतलता प्रदान करने वाली आप, मेरे भी पाप ताप का शमन कर शांति प्रदान करे॥ ४९॥

मन्त्रैर्मीलितमौषधैर्मुकुलितं त्रस्तुं सुराणां गणैः
स्रस्तं सान्द्रसुधारसैर्विदलितां गारुत्मतैर्ग्रावभिः।
वीचिक्षालितकालियाहितपदे स्वर्लोककल्लोलिनि
त्वं तापं तिरयाधुना मम भवज्वालावलीढात्मनः॥ ५०॥

स्वर्गलोक कल्लोगिनी गंगे ! आपकी लहरों के स्पर्श से तो कलि बह ही गया ! अब मेरी इस त्रस्त आत्मा का भी उद्धार करो। भाव भुजंग से ग्रसित इसका न मन्त्र, न औषधि, न सुरसमूह, न गरिष्ठ सुधा और न ही गरुत्मान मणि उपचार है ॥ ५० ॥

द्यूते नागेन्द्रकृत्तिप्रमथगणमणिश्रेणिनन्दीन्दुमुख्यं
सर्वस्वं हारयित्वा स्वमथ पुरभिदि द्राक् पणीकर्तुकामे।
साकूतं हैमवत्या मृदुलहसितया वीक्षितायास्तवाम्ब
व्यालोलोल्लसिवल्गल्लहरिनटघटीताण्डवं नः पुनातु ॥ ५१ ॥

चौसर की दयूत क्रीडा में दांव पर अपने प्रमथगण, नंदी, ईंदु, गलहार नाग, गजचर्म सहित सब कुछ हारने के बाद जब शिव स्वयं को दांव पर लगाने को तत्पर हुए, तब अकूत जलभंडार युक्त स्वर्णकलंश लिए तांडव नर्तक की भांति आपके जिस नर्तन को मृदुल हास्य के साथ पार्वतीजी ने देखा, वो हमारा पवित्र प्रोक्षण करे ॥ ५१ ॥

विभूषितानङ्गरिपूत्तमाङ्गा सद्यः कृतानेकजनार्तिभङ्गा।
मनोहरोत्तुङ्गजलत्तरङ्गा गङ्गा ममाङ्गान्यमलीकरोतु ॥ ५२ ॥

अनंग-रिपु शिव के उत्तम भाल को विभूषित करने वाली गंगा असंख्य जनों के कष्टों का क्षण में शमन करती है। मनोहर उत्तंग तरंगों से हे माँ, मेरे अंगों को अमल करदो ॥ ५२ ॥

इमां पीयूषलहरीं जगन्नाथेन निर्मिताम्।
यः पठेत्तस्य सर्वत्र जायन्ते सुखसम्पदः ॥ ५३ ॥

यह जगन्नाथद्वारा विरचित पीयूबलहरीको जो सर्वत्र पढता है उसे सभी जगह सुख-सम्पत्ति मिलति है ॥ ५३ ॥

श्रीगङ्गाष्टकम्

मातः शैलसुतासपत्नि वसुधाशृङ्गारहारावलि
स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथि प्रार्थये।
त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बु पिबतस्त्वद्वीचिषु प्रेङ्खतस्त्वन्नाम स्मरतस्त्वदर्पितदृशः
स्यान्मे शरीरव्ययः ॥ १ ॥

पृथ्वीकी शृंगारमाला, पार्वतीजीकी सपत्नी और स्वर्गारोहणके लिये वैजयन्ती पताकारूपिणी हे माता भागीरथि! मैं तुमसे यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारे तटपर निवास करते हुए, तुम्हारे जलका पान करते हुए, तुम्हारी तरंगभंगीमें तरंगायमान होते हुए, तुम्हारा नामस्मरण करते हुए और तुम्हींमें दृष्टि लगाये हुए मेरा शरीरपात हो ॥ १ ॥

त्वत्तीरे तरुकोटरान्तरगतो गङ्गे विहङ्गो वरं त्वन्नीरे
नरकान्तकारिणि वरं मत्स्योऽथवा कच्छपः।
नैवान्यत्र मदान्धसिन्धुरघटासङ्घट्टघण्टारणत्कारत्रस्त –
समस्तवैरिवनितालब्धस्तुतिर्भूपतिः ॥ २ ॥

हे गंगे! तुम्हारे तटवर्ती तरुवरके कोटरमें पक्षी होकर रहना अच्छा है तथा हे नरकनिवारिणि! तुम्हारे जलमें मत्स्य या कच्छप होकर जन्म लेना भी बहुत अच्छा है, किंतु दूसरी जगह मदमत्त जगराजोंके जमघटके घण्टारवसे भयभीत हुई शत्रुमहिलाओंसे स्तुत पृथ्वीपति भी होना अच्छा नहीं ॥ २ ॥

उक्षा पक्षी तुरग उरगः कोऽपि वा वारणो वा वारीणः स्यां जननमरणक्लेशदुःखासहिष्णुः।
न त्वन्यत्र प्रविरलरणत्कङ्कणक्वाणमिश्रं वारस्त्रीभिश्चमरमरुता वीजितो भूमिपालः ॥ ३ ॥

हे मातः! मैं भले ही आपके आर-पार रहनेवाला जन्म-मरणरूप क्लेशको सहन न करनेवाला कोई बैल, पक्षी, घोडा, सर्प अथवा हाथी हो जाऊँ, किंतु (आपसे दूर) किसी अन्य स्थानपर ऐसा राजा भी न होऊँ, जिसपर वाराङ्गनाएँ मन्द-मन्द झनकारते हुए कंकणोंकी सुमधुर ध्वनिसे युक्त डुला रही हों ॥ ३ ॥

काकैर्निष्कुषितं श्वभिः कवलितं गोमायुभिर्लुण्ठितं
स्रोतोभिश्चलितं तटाम्बुलुलितं वीचीभिरान्दोलितम्।
दिव्यस्त्रीकरचारुचामरमरुत्संवीज्यमानः कदा
द्रक्ष्येऽहं परमेश्वरि त्रिपथगे भागीरथि स्वं वपुः ॥ ४ ॥

हे परमेश्वरि ! हे त्रिपथगे ! हे भागीरथि ! (मरनेके अनन्तर) दवांगनाओंके करकमलोंमें सुशोभित सुन्दर चमरोंकी हवासे सेवित हुआ मैं अपने मृत शरीरको काकोंसे कुरेदा जाना हुआ, कुत्तोंसे भक्षित होता हुआ, गीदडोंसे लुण्ठित होता हुआ, तुम्हारे स्रोतमें पडकर बहता हुआ, कभी किनारेके स्वल्प जलमें हिलता हुआ और फिर तरंगभंगियोंसे आन्दोलित होता हुआ कब देखूँगा ? ॥ ४ ॥

अभिनवबिसवल्ली पादपद्मस्य विष्णोर्मदनमथनमौलेर्मालतीपुष्पमाला ।
जयति जयपताका काप्यसौ मोक्षलक्ष्म्याः क्षपितकलिकलङ्का जाह्नवी नः पुनातु ॥ ५ ॥

जो भगवान् विष्णुके चरणकमलका नूतन मृपाल (कमलनाल) है था कामारि त्रिपुरारिके ललाटकी मालती-माला है४ वह मोक्षलक्ष्मीकी विलक्षण विजयपताका जयको प्राप्त हो । कलिकलंकको नष्ट करनेवाली, वह जाह्नवी हमें पवित्र करे ॥ ५ ॥

एतत्तालतमालसालसरलव्यालोलवल्लीलताच्छन्नं
सूर्यकरप्रतापरहितं शङ्खेन्दुकुन्दोज्ज्वलम् ।
गन्धर्वामरसिद्धकिन्नरवधूतुङ्गस्तनास्फालितं स्नानाय
प्रतिवासरं भवतु मे गाङ्गं जलं निर्मलम् ॥ ६ ॥

जो ताल, तमाल, साल, सरल तथा चंचल वल्लरी और लताओंसे आच्छादित है, सूर्यकिरणोंके तापसे रहित है, शंख, कुन्द और चन्द्रके समान उज्ज्वल है तथा गन्धर्व, देवता, सिद्ध और किन्नरोंकी कामिनियोंके पीन पयोधरोंसे आस्फालित (टकराया हुआ) है, वह अत्यन्त निर्मल गंगाजल नित्यप्रति मेरे स्नानके लिये हो ॥ ६ ॥

गाङ्गं वारि मनोहरि मुरारिचरणच्युतम् ।
त्रिपुरारिशिरचारि पापहारि पुनातु माम् ॥ ७ ॥

जो श्रीमुरारिके चरणोंसे उत्पन्न हुआ है, श्रीशंकरके सिरपर विराजमान है तथा सम्पूर्ण पापोंको हरण करनेवाला है, वह मनोहर गंगाजल मुझे पवित्र करे ॥ ७ ॥

पापापहारि दुरितारि तरङ्गधारि शैलप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि ।
झङ्कारकारि हरिपादरजोऽपहारि गाङ्गं पुनातु सततं शुभकारि वारि ॥ ८ ॥

जो पापोंको हरण करनेवाला, दुष्कर्मोंका शत्रु, तरंगमय, शैलखण्डोंपर बहनेवाला, पर्वतराज हिमालयकी गुहाओंको विदीर्ण करनेवाला, मधुर कलकल-ध्वनियुक्त और श्रीहरिकी चरणरजको धोनेवाला है, वह निरन्तर शुभकारी गंगाजल मुझे पवित्र करे ॥ ८ ॥

गङ्गाष्टकं पठति यः प्रयतः प्रभाते वाल्मीकिना विरचितं शुभदं मनुष्यः ।
प्रक्षाल्य गात्रकलिकल्मषपङ्कमाशु मोक्षं लभेत पततिनैव नरो भवाब्धौ ॥ ९ ॥

जो पुरुष वाल्मीकिजीके रचे हुए इस कल्याणप्रद गंगाष्टकको प्रात:काल एकाग्रचित्तसे पढता है, वह अपने शरीरके कलिकल्मषरूप कीचडको धोकर शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है और फिर संसार-समुद्रमें नहीं गिरता ॥ ९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमहर्षिवाल्मीकिविरचित श्रीगङ्गाष्टक सम्पूर्ण हुआ ॥

श्रीगंगामहिमाष्टकम्

भगवच्चरणाम्बुजदिव्यसुधां शितिकण्ठजटासुकदम्बगताम् ।
गिरिमौलिहिमालयनिर्झरितां भज मानस विष्णुपदीं नितराम् ।। १ ।।

हे मानस ! (मन) भगवान् श्रीविष्णु के चरणारविन्द्र की नित्य रस सुधा, शितिकण्ठ (भगवान् श्रीशङ्कर) के जटा-समुदाय में प्राप्त हुई, पर्वतों के मुकुटभूत हिमालय-पर्वत से निर्झरित, विष्णुपदी श्रीगङ्गजी का तुम निरन्तर भजन करो ।। १ ।।

भगवत्करुणामृतरूपधरां भगवत्कृपया भुवि नो द्रविताम् ।
कलिकल्मषतप्तजनाऽघहरां भज मानस विष्णुपदीं नितराम् ।। २ ।।

हे मानस ! भगवान् के करुणामय अमृत स्वरूप को धारण करने वाली, भगवत्कृपा से ही हमारे लिये इस भूमण्डल में द्रवित हुई (पधारी), कलियुग के कल्मष (पाप) से सन्तप्त जनों के पाणों को हरने वाली, विष्णुपदी श्रीगङ्गजी का तुम निरन्तर भजन करो ।। २ ।।

अतितीव्रगभीरतरङ्गवृतां जलजस्तबकद्युतितुञ्जयुताम् ।
निजनीरसमस्तसुदत्तसुखां भज मानस विष्णुपदीं नितराम् ।। ३ ।।

हे मन ! अत्यन्त तीव्र व गम्भीर तरङ्गों से सुशोभित कमल के गुच्छों की कान्ति के समूह से युक्त, अपने परम पावन जल से समस्त भक्तों को सुख देने वाली, विष्णुपदी श्रीगङ्गजी का तुम निरन्तर भजन करो ।। ३ ।।

ऋषि-तापसभक्तिसमुल्लसितां सततं मुनिवृन्दगिरोच्चरिताम् ।
सुर-किन्नर-साधुजनैः प्रणुतां भज मानस विष्णुपदीं नितराम् ।। ४ ।।

हे मन ! ऋषियों की तपस्या व भक्ति से उल्लस युक्त, सदा मुनि समुदाय को वाणी द्वारा श्री गङ्गे ! हे गङ्गे ! इस प्रकार कही गई, देवता, किन्नर तथा साधुजनों द्वारा नमस्कृत विष्णुपदी श्रीगङ्गाजी का तुम निरन्तर भज करो ।। ४ ।।

यदिहोत्तरभारतभूद्रवितां गिरि-गह्वरपारकरीं मुदिताम् ।
सह भानुजया व्रजितां खलु तां भज मानस विष्णुपदीं नितराम् ।। ५ ।।

हे मन ! जो कि उत्तर भारत की भूमि में द्रवित हुई है, पर्वतों व गुफाओं को पार करने वाली व अति प्रसन्न है, श्रीयमुनाजी के साथ जो जा मिली हैं, निशच्य से उन ! विष्णुपदी श्रीगङ्गजी का निरन्तर भजन करो ।। ५ ।।

श्रुतिमन्त्रगणग्रथितां प्रथितां निजमञ्चुलनिः स्वननृत्यरताम् ।
अमिताऽमयपीडितपापहरां भज मानस विष्णुपदीं नितराम् ॥ ६ ॥

हे मन ! वेद मन्त्रों की ध्वनि से युक्त, प्रसिद्ध, अपने मधुर कल-कल स्वर के साथ नृत्य करने में निरत, अत्यधिक रोगों से पीडित लोगों का पाप हरने वाली, विष्णुपदी श्रीगङ्गाजी का निरन्तर भजन करो ॥ ६ ॥

स्वकतोयसुधापरितापशमां प्रणतागतचित्तसुधाप्रतिताम् ।
हरिसच्चरणामृतरूपधरां भज मानस विष्णुपदीं नितराम् ॥ ७ ॥

हे मन ! अपने पवित्र जल रूप अमृत से भक्तों के सन्ताप को शान्त करने वाली, प्रणत एवं शरणागत जनों के चित्त के लिये अमृत जैसी (सुख प्रदायिनी), श्रीहरि के श्रेष्ठ चरणामृत का मङ्गल स्वरूप धारण करने वाली, विष्णुपदी श्रीगङ्गाजी का निरन्तर भजन करो ॥ ७ ॥

भवभीषणशोकविपत्तिहरां भवसागरमग्नजनोद्धरणाम् ।
व्रजमोहनकृष्णपदाब्जरतां भज मानस विष्णुपदीं नितराम् ॥ ८ ॥

हे मन ! संसार के भयङ्कर से भयङ्कर शोक व विपत्तियों को हरण करने वाली, भव-सागर में निमग्न जनों का उद्धार करने वाली, व्रज के मोहन श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरण-कमलों में निरत नित्य निवास करने वाली श्रीगङ्गाजी का निरन्तर भजन करो ॥ ८ ॥

पराभक्तिप्रदं स्तोत्रं श्रीगङ्गामहिमाष्टकम् ।
राधासर्वेश्वराद्येन शरणान्तेन निर्मितम् ॥ ९ ॥

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठधिपति श्री श्रीजी श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज द्वारा विनिर्मित श्रीगङ्गामहिमाष्टक नाम का यह स्तोत्र नित्य पाठ करने वालों के लिये परा भक्ति देने वाला है ॥ ९ ॥

श्री लक्ष्मीनारायण भगवान्, श्रीहरि मन्दिर, पोरबन्दर

॥ ॐ ॥

हिमालय की उपत्यकाओं से कल कल निनाद करती हुयी, परम पावनी भगवती भागीरथी की पावन धारा की ही भाँति, हमारे आद्य शंकराचार्य जैसे दिव्य ऋषियों के हृदय से माँ गंगा के स्तवन के रूप में जो धारा निसृत हुयी, वह विभिन्न स्तोत्रों के रूपमें हमारे पास है।

उनमें से चयनित पाँच स्तोत्रों की यह पुस्तिका 'गंगास्तोत्र पंचकम्', 'वैदिक संस्कृति परिवार' के द्वारा गंगोत्री में आयोजित श्रीमद् भागवत कथा के अवसर पर भक्तों को पाठ हेतु समर्पित की जा रही है। अर्थ भी साथमें दिया गया है, जिससे उसकी उपयोगिता बढ़ेगी।

इस स्तुत्य प्रयास के लिये प्रसन्नता एवम् आशीष। माँ गंगा सबको पावनता और प्रेम प्रदान करे।

भाई

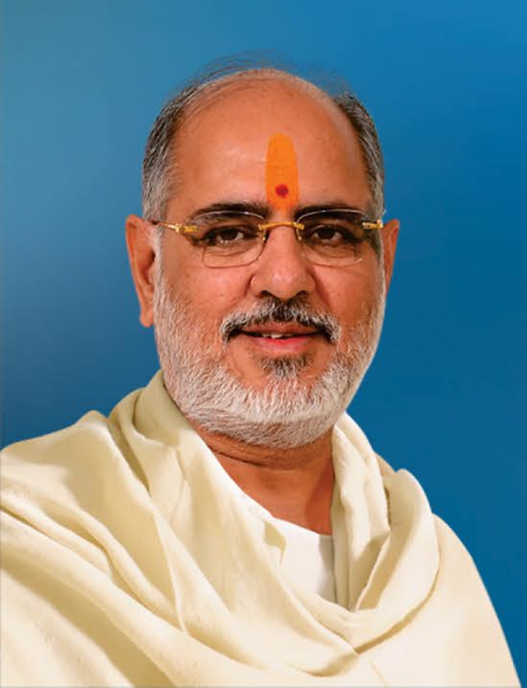

वसुधैव कुटुंबकम्

॥ सान्दीपनि ॥